ISSN 0974-8857

तुलसी प्रज्ञा

TULSÍ PRAJÑÁ

वर्ष 42 • अंक 167-168 • जुलाई-दिसम्बर 2015

A Peer Reviewed Research Quarterly

जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान) भारत
JAIN VISHVA BHARATI INSTITUTE
Ladnun - 341 306, Rajasthan, India

तुलसी प्रज्ञा

ISSN 0974-8857

TULSĪ PRAJÑĀ

A Peer Reviewed Research Quarterly of Jain Vishva Bharati Institute

YEAR-42 VOL.-167-168 JULY-DECEMBER, 2015

अनुक्रमणिका / CONTENT

ENGLISH SECTION

Subject	Author	Page No.
Ācārāṅga-Bhāṣyam	Ācārya Mahāprajña	05-08
Non-violence: It's Different Aspects	Prof. B.R. Dugar	09-20
Tragedies in Sanskrit (Literature) Dramas: A Resume	Dr Chandramouli S. Naikar	21-26
Health and Happiness in Jainism	Dr. Samani Rohit Pragya	27-37
Use and Evolution of Languages in Jain Literature	Abhishek Jain	38-48
Veganism with Jainism : A Better Life for Everyone	Gabrial Mc Carty	49-62

हिन्दी खण्ड

विषय	लेखक	पृ. संख्या
उमास्वति और उनका तत्त्वार्थसूत्र	प्रो. सागरमल जैन	63-72
समाधिमरण के वैदिक पुराणगत उल्लेख	प्रो. दामोदर शास्त्री	73-83
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में निर्विकल्पक प्रत्यक्ष एवं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष	प्रो. धर्मचन्द जैन	84-95
अहिंसा का आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक पक्ष : आचाराङ्ग के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. समणी संगीत प्रज्ञा	96-109
शिक्षा के विकास में सम्यग् दर्शन की भूमिका : एक अध्ययन	डॉ. गिरधारीलाल शर्मा	110-114
आचार्य कुन्दकुन्द के आधार पर निश्चय और व्यवहार नय की समीक्षा	डॉ. आलोक कुमार जैन	115-125

अहिंसा का आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक पक्ष : आचारांग के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. समणी संगीत प्रज्ञा

भगवान महावीर ने जिस धर्म का प्रतिपादन किया, वह विशुद्ध रूप में आध्यात्मिक धर्म है। उसका प्रारम्भ बिन्दु है आत्मा का संज्ञान और चरम-बिन्दु है आत्मोपलब्धि या आत्मा का साक्षात्कार। आचारांग के प्रथम अध्ययन में आत्मा की कर्मकृत विभिन्न अवस्थाओं को समझने का दृष्टिकोण दिया है। पर्यावरण की दृष्टि से उसका अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। समता और आत्मतुला - ये दोनों पर्यावरण के प्रदूषण से बचाव करने के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। पृथ्वी आदि जीवों के छह निकाय हैं। भगवान महावीर ने कहा- इनके अस्तित्व को अस्वीकार करना, अपने अस्तित्व को अस्वीकार करना है। हिंसा स्वयं प्रमाद है अथवा प्रमाद की निष्पत्ति है। अहिंसक अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होता है। साथ-साथ दूसरे जीवों के अस्तित्व के प्रति जागरूक होना भी है। यह जागरूकता आत्मतुला के सिद्धान्त से विकसित होती है। इसलिए भगवान महावीर ने कहा- आत्मतुला का अन्वेषण करो - **"एयं तुलमन्नेसिं"**।

अहिंसा का सिद्धान्त हिंसा के साधन को समझे बिना समग्रता से नहीं समझा जा सकता। अतः आचारांग में परिग्रह और अपरिग्रह का विशद विवरण उपलब्ध है। **'तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि'**

हम सब सापेक्ष हैं। सापेक्षता की अनुभूति होती है तब समन्वय के द्वारा परस्पर संबंध स्थापित होता है। सापेक्षता और समन्वय की दिशा में प्रस्थान अहिंसा का पहला पड़ाव बनता है। हिंसा के द्वारा मांग पूरी हो जाती है, सफलता जल्दी मिल जाती है। यह विश्वास मानव मस्तिष्क में रूढ़ हो गया। क्वचित् सफलता का आभास मिल जाता है, इसलिए उसकी पुष्टि हो जाती है। व्यापक संदर्भ में इसे देखें तो पता चलेगा, कि मनुष्य जाति का सबसे अधिक अनिष्ट हिंसा ने किया है।

भगवान महावीर, भगवान बुद्ध और महात्मा गांधी ने इस सच्चाई की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया था, फिर भी हिंसा का पक्ष बहुत प्रबल है, उसे भारी समर्थन मिलता है। राष्ट्रीय विघटन हिंसा का ही एक स्फुलिंग है।

हिंसा की समस्या :- मानव जाति एक है- यह सैद्धान्तिक बात है। व्यावहारिक बात इससे भिन्न है। कर्म, संस्कार, विचार, रूचि और आचार की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य भिन्न है। वह भिन्नता ही संघर्ष, हिंसा और तनाव का कारण बनती है। जिनमें आवेश की प्रबलता है, वे हिंसा में विश्वास करते हैं।

अहिंसा क्रान्ति - राग और द्वेष से मुक्त होना अहिंसा है। सब जीवों के प्रति संयम करना, समभाव रखना अहिंसा है। समानता का भाव सामुदायिक जीवन में विकसित होता है तब अहिंसक क्रान्ति घटित हो जाती है। महावीर ने अहिंसक क्रान्ति के लिए जनता को ये सूत्र दिए-

1. किसी का वध मत करो।
2. किसी के साथ वैर मत करो। जो दूसरों के साथ वैर करता है, वह अपने वैर की श्रृंखला को प्रलम्ब कर देता है।
3. सबके साथ मैत्री करो।

   अहिंसा के इन सूत्रों का मूल्य वैयक्तिक था। महावीर ने सामाजिक सन्दर्भ में भी अहिंसा के सूत्र प्रस्तुत किये।
4. उस समय दास-प्रथा चालू थी। सम्पन्न मनुष्य विपन्न मनुष्य को खरीदकर दास बना लेता था। महावीर ने इस हिंसा के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने एक सूत्र दिया-दास बनाना हिंसा है, इसीलिए किसी को दास मत बनाओ।
5. उस समय के पुरुष स्त्रियों को और शासक वर्ग शासितों को पराधीन रखना अपना अधिकार मानते थे। महावीर ने इस ओर जनता का ध्यान खींचा कि दूसरों को पराधीन बनाना हिंसा है। उन्होंने अहिंसा का सूत्र दिया-दूसरों की स्वाधीनता का अपहरण मत करो।
6. उस समय उच्च और नीच- ये दो जातियां समाज व्यवस्था द्वारा स्वीकृत थी। उच्च जाति नीच जाति से घृणा करती थी। उसे अछूत भी मानती थी। महावीर ने इस व्यवस्था को अमानवीय प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा-जाति वास्तविक नहीं है। जाति परिवर्तन शील है। इसे शाश्वत रूप देकर हिंसा को प्रोत्साहन मत दो। किसी मनुष्य से घृणा मत करो। उन्होंने सब जाति के लोगों को अपने संघ में सम्मिलित कर मनुष्य जाति एक हैं- इस आंदोलन को गतिशील बना दिया।
7. उस समय स्वर्ग की प्राप्ति के लिए पशु बलि दी जाती थी। महावीर ने कहा- स्वर्ग मनुष्य का उद्देश्य नहीं है, उसका उद्देश्य है निर्वाण, परम शांति। पशुबलि से स्वर्ग

नहीं मिलता। जो पशु की बलि देता है, वह उसकी हिंसा कर अपने लिए नरक का द्वारा खोलता है।

8. उस समय माना जाता था कि युद्ध में मरने वाला स्वर्ग में जाता है। महावीर ने उसकी अवास्तविकता का प्रतिपादन करते हुए कहा- 'युद्ध हिंसा है। वैर से वैर बढ़ता है। उससे समस्या का समाधान नहीं होता।

9. आक्रमण मत करो। मांसाहार और शिकार का वर्जन करो।

आचारांग अहिंसा प्रधान ग्रंथ है। प्रस्तुत ग्रंथ में जितनी सूक्ष्मता से अहिंसा का विवेचन किया गया है, उतनी ही सूक्ष्मता से हिंसा का विवेचन किया गया है। हिंसा क्या? क्यों? इन प्रश्नों की चर्चा के साथ प्रस्तुत सूत्र में हिंसा से उपरत होने का विवेक भी दिया गया है। हिंसा की समस्या पर विधि-निषेधपरक चिंतन इसकी विलक्षणता का द्योतक है। हिंसा समस्या का उत्स नहीं है। इस दृष्टि से यह समस्या नहीं है और हिंसा के कारण समस्या की परिधि का विस्तार होता है, इस दृष्टि से यह समस्या है। जीवन के निषेधात्मक पक्ष पर समन्वय परक चिंतन महावीर के अनेकान्त चिंतन की फलश्रुति है।

आचारांग में हिंसा की अर्थ मीमांसा

आचारांग में हिंसा के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त हैं- कम्मसमारंभ[1], दंड[2], आरम्भ[3], छण[4]।

इसके अतिरिक्त विप्परामुसइ[5] शब्द का प्रयोग भी हिंसा के अर्थ में हुआ है। विप्परामुसइ का संस्कृत रूप विपरामृशति बनता है। आप्टे में इसका अर्थ हिंसा किया है- परामर्श : Violence[6]

हिंसा के लक्षण

हिंसा का स्वरूप बहुत भयावह है, रोमांचकारी है। फिर भी प्राणी हिंसा से उपरत होने की दिशा में प्रयत्न नहीं करता। हिंसा में ऐसा कोई आकर्षण या लेप है जो प्राणी को अपनी और आकर्षित करता है। जैसे- चुंबक लोहे को आकर्षित करता है। इसलिए आचारांग में हिंसक को आर्त्त, परिजीर्ण, दुःसंबोध और अविज्ञायक कहा है।[7]

1. आर्त्त

आर्त्त व्यक्ति हिंसक होता है। आर्त्त उसे कहा जाता है जिसकी चेतना इन्द्रिय और मन के स्तर पर काम करती है। आर्त्त व्यक्ति केवल प्रियता या अप्रियता में ही उलझ जाता है। इन्द्रिय और मन को प्रियता प्रदान करने वाले पदार्थों की प्राप्ति में और इन्द्रिय व मन को अप्रियता प्रदान करने वाले पदार्थों से उपरत होने में ही अपनी सारी शक्ति का नियोजन कर देता है। जहाँ इन्द्रिय और मन के स्तर पर चेतना का विकास होता है वहां इन्द्रिय व मन की लालसा की पूर्ति ही मुख्य बन जाती है। 'अट्टमेतं पेहाए' सूत्र से सूत्रकार इसी की संपुष्टि करते हैं। व्यक्ति काम व उसकी प्राप्ति के साधन अर्थ की चिंता से व्याकुल होकर सतत आर्त्तध्यान करता है।

2. परिजीर्ण

हिंसक का दूसरा लक्षण है- परिजीर्ण चेतना से युक्त चित्तवाला। परिजीर्ण से तात्पर्य है- औपशमिकादि प्रशस्त भाव से हीन और अव्यभिचारि मोक्ष साधन से हीन।[8] परिजीर्ण व्यक्ति का चित्त हमेशा पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा में लगा रहता हैं। उसे न तो पदार्थ की प्राप्ति होती है और न वह पदार्थ को प्राप्त करने की साधन सामग्री जुटाने में सफल हो जाता है। तब भी उसका मन प्राप्ति की आंकाक्षा से मुक्त नहीं हो पाता। उसका चित्त हर समय विक्षिप्त रहता है। औदयिक भावों के उदय से उसका ज्ञान विफल हो जाता है।

3. दुःसंबोध

हिंसा में वही व्यक्ति प्रवृत्त होता हैं जिसे सम्यक् ज्ञान नहीं होता। ऐसा व्यक्ति समझाने पर भी ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ होता है। वृत्तिकार ने विषय, कषाय आदि से आर्त्त और प्रशस्त ज्ञानादि से रहित को दुःसंबोध कहा है- **दुस्संबोध इति दुःखेन सम्बोध्यते धर्माचरणप्रतिपत्तिं कार्यत इति दुस्सबोधो।**[9] जिनके सम्यक् ज्ञान नहीं होता है, विषयों की परिधि में जीते हैं, वे मिथ्या मान्यताएं बनाते हैं और हिंसा करते हैं। दुःसंबोध-प्राणियों की संबोधि जागृत नहीं होती इसलिए वे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह सम्यक् आचरण को जीवन व्यवहार में नहीं उतार सकते।

4. अविज्ञायक

तत्त्व से अनभिज्ञ व्यक्ति हिंसा में प्रवृत्त होता है। आचारांग के अनुसार अज्ञानी व्यक्ति लोक में व्यथा का अनुभव करते हैं।[10] "अवियाणए ति विशिष्टावबोध रहितः"[11] जिसका ज्ञान पक्ष पुष्ट नहीं होता वह व्यक्ति हिंसा से उपरत नहीं हो सकता। संयम प्रज्ञागम्य है।[12] अनात्मप्रज्ञा व्यक्ति धर्म को सुनकर भी उसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। आचारांग के अनुसार "पासह एगेव सीयमाणे अणत्तण्णे।" आत्मप्रज्ञा से शून्य अवसाद को प्राप्त करते हैं। मानसिक संताप को प्राप्त करते हैं। चूर्णिकार ने इसका स्पष्टीकरण किया है- जो अनात्म प्रज्ञा है, केवल बुद्धि विलास में रमण करते हैं। वे संयम का पथ स्वीकार करके भी असंयम को प्राप्त करते है। अविज्ञाता व्यक्ति संयम जीवन में आने वाले कष्टों से विचलित हो जाते हैं। प्राणातिपात आदि में प्रवृत्त हो जाते हैं। इसलिए वे हिंसक बन जाते हैं।[13]

5. आतुरता

हिंसक मनोवृत्ति की उत्पति का एक बड़ा कारण है आतुरता। आतुर व्यक्ति विभिन्न प्रकार से हिंसा में प्रवृत्त होता है[14] आतुरता के कारण चित्त विषय कषाय की चेतना से इतना अधिक आवृत्त हो जाता है कि उसे अपने अस्तित्व का भी बोध नहीं होता। आतुर व्यक्ति कृषि-कर्म, खनन, क्रिया गृह-निर्माण आदि विभिन्न हिंसात्मक कार्यों में प्रवृत्त हो स्वंय भी परितप्त होता है दूसरों को भी परितापित करता है।

कामातुर

काम से आतुर व्यक्ति की इन्द्रियां स्वछंद होती हैं। उसकी चेतना शरीर के अधःभाग नाभि से नीचे के स्थान में रहती है। काम का मुख्य स्थान गोनाड्स है। इसकी अति सक्रियता भी कामातुरता पैदा करती है। मूलतः काम एक मौलिक मनोवृत्ति है। इसके कारण पीड़ा से परिताप को प्राप्त होते हैं। इसलिए आचारांग में कहा है- **''कामकामी खलु अयं पुरिसे।''** पुरूष स्वभाव से ही काम भोगों की कामना करता है।

भयातुर

प्राणियों को परिताप देना महान भय है। भय से आतुर व्यक्ति वह होता है जिसकी बुद्धि विषयों से अनुबंधित हो जाती है। उसे प्राप्त विषयों के प्रति इतना लगाव हो जाता है जिसके कारण चेतना विषयों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। प्राप्त विषय कोई छीन न ले यह भय निरन्तर बना रहता है। मनोविज्ञान के अनुसार यह वृत्ति मानसिक चेतना से प्रभावित होती है और अधिकार की भावना से क्रियाशील होती है। इस मनोवृत्ति के उद्दीपन से प्राप्त विषयों के संरक्षण की वृत्ति प्रबल हो जाती है।

क्षुधातुर

क्षुधातुर व्यक्ति को भूख निरन्तर सताती रहती है। भूख के संबंध में मनोवैज्ञानिकों[15] का मानना है कि रक्त में शर्करा की कमी से पेट में संकोचन होने लगता है। इसके कारण व्यक्ति को भूख महसूस होती हैं।

तीन प्रकार की आतुरता हिंसा को जन्म देती है। काम क्षुधा आदि हिंसा के प्रेरक तत्त्व हैं। आतुरता अज्ञान पूर्ण मनः स्थिति है और असंबोधि को उत्पन्न करती है। यह एक आवृत्त की तरह हिंसक प्रवृतियों को बढ़ावा देने वाली है। धम्मपद में कहा है- **आतुरेषु मनुस्सरेसु विहराम अनातुर।**[16]

हिंसा के कारक तत्त्व

हिंसा एक है, कारण अनेक हैं। आचारांग में हिंसा के कारणों पर विस्तार से चर्चा की गई है। महावीर ने हिंसा का मूल कर्म को माना है। **''कम्ममूलं च ज छणं''**[17] जिस कर्म के उदय से जीव हिंसा में प्रवृत्त होता है उसे प्राणातिपात पापस्थान कहा जाता है। प्राणातिपात का मुख्य हेतु है चित्त की प्रव्यथित अवस्था। **''अस्सिं लोए पव्वहिए''**- सूत्र से इसी तथ्य की पुष्टि होती है। आचारांग में बहुत ही मनोवैज्ञानिक तरीके से हिंसा के कारणों का उल्लेख किया है। यथा जिजीविषा, प्रशंसा, मान, पूजा, जाति, मुक्ति व दुःख से निवृत्ति।[18]

इन कारणो से प्रेरित होकर मनुष्य हिंसा में प्रवृत्त होता है।

1. जिजीविषा

प्रत्येक शरीरधारी में जीने की इच्छा प्रबल होती है। सभी प्राणियों को जीवन प्रिय होता है।[19] जीवन की सुरक्षा के लिए अनेक प्रकार से हिंसा की प्रवृत्ति की जाती है। **''तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं संसिचियाणं तिविहेणं जा वि से तत्थ मत्ता भवइ-अप्पा वा बहुगा वा।''**[20] जिजीविषा कर्म का स्रोत है। जीने की प्रबल आकांक्षा के कारण ही व्यक्ति क्रूर कर्म करता है। आधुनिक युग में चिकित्सा के क्षेत्र में जितनी हिंसा हो रही है इसके पीछे जिजीविषा की प्रबल भावनाएं काम कर रही हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति का आधार हिंसा पर टिका हुआ है। एक डॉक्टर कितने बेजुबान प्राणियों को मारकर मनुष्यों के जीवन को बचाने में सफल होता है। ब्रिटिश मेडिकल कांउसिल की एक प्रयोगशाला द्वारा ब्रिटेन में रह रही 20 पंजाबी महिलाओं को धोखे से रेडियोधर्मी चपाती खिलाकर एक परीक्षण किया गया। परीक्षण का उद्देश्य था संभावित परमाणु युद्ध की स्थिति में रेडियोधर्मी प्रदूषित अनाज का मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी करना। उसमें 19 महिलाएं तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो गई। एक महिला जिसने इस रहस्य का उद्घाटन किया मरी नहीं। किन्तु जिन्दा लाश बन गई।[21] ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं जो इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि जिजीविषा की प्रबल भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति हिंसा करता है। इसलिए महावीर ने कहा- **''तेईच्छा पंडिते पवयमाणे।''** महावीर ने कहा- ये चिकित्सा विधियां अपर्याप्त हैं। इनसे रोगों का पूर्ण शमन नहीं हो सकता। **''अलं तवे एहिं।''**[22]

2. परिवंदन प्रशंसा

वृत्तिकार ने परिवंदन का अर्थ प्रशंसा किया है। वृत्तिकार ने पाठ के आधार पर अर्थ परिवर्तन किया है। परिवंदन-संस्तवः, प्रशंसा[23] किन्तु प्रस्तुत संदर्भ में परिवंदन के स्थान पर परिवंहण पाठ संगत लगता है। क्योंकि व्यक्ति जीवन को उपचित करने के लिए अनेक रसायनों का, दवाइयों का प्रयोग करता है। जो हिंसा से निष्पन्न होती हैं।

3. मानन

सम्मान के लिए भी हिंसा की जाती है। सम्मान की भावना को भी बहुत बड़ा परिग्रह माना गया है।

4. पूजन

सम्मान की तरह पूजा के लिए भी हिंसात्मक प्रवृत्ति की जाती है। पूजन का तात्पर्य है अर्चना, तिलक आदि करना। भगवान् महावीर के काल में धर्म का क्रिया-कांड रूप प्रधान था। पूजा करने के पीछे उद्देश्य था- जन्म मरण से मुक्ति प्राप्त करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ लोग तंत्र,मंत्र का उपयोग करते थे। कुछ लोग पशुबलि या नरबलि भी करते थे।

5. जाति-मरण

प्रस्तुत प्रसंग में जाति शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जा सकता है। 1.जाति समुदाय 2.जाति जन्म । सादृश्यता के आधार पर बनने वाले वर्ग विशेष को जाति कहा जाता है, किन्तु यहां जाति का अर्थ जन्म अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। क्योंकि जाति का अर्थ जन्म व मरण का अर्थ मृत्यु। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो कर्म संभारंभ किया जाता है, जो हिंसा की जाती है, वह इसी पद में समाहित हो जाता है।

6. दुःख प्रतिकार

दुःख तीन प्रकार के हैं- आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। दुःख की त्रिपदी से छुटकारा पाने के लिए भी हिंसा की जाती है।

हिंसा का स्वरूप

हिंसा का स्वरूप भयावह और दुःखदायी है, क्योंकि हिंसा ग्रन्थि, मोह, मृत्यु और नरक है।[24] हिंसा एक ग्रन्थि है इससे चित्त ग्रथित हो जाता है। उसमें ऐसा संस्कार निर्मित हो जाता है जिससे वह मुक्त नहीं हो सकता।

हिंसा मृत्यु है

हिंसा करने का अर्थ है अपनी आत्मा का हनन करना। हिंसा करने वाला दूसरे का अहित बाद में करता है, अपने दुश्चिंतन से अपना अहित पहले ही कर लेता है। कहा जाता है कि बार-बार निषेधात्मक चिंतन करने से शरीर की 15000 श्वेत रक्त कणिकाएं नष्ट हो जाती हैं। शरीर में रोग- प्रतिरोधात्मक क्षमता का आधार ये कोशिकाएं हैं। इससे स्वतः सिद्ध होता है कि हिंसा करने वाला दूसरे का वध करने से पहले अपना वध करता है, दूसरे को नहीं मारता स्वयं मरता है। अनेक व्याधियां हो जाती हैं। फिर समाधि की प्राप्ति कैसे हो सकती है। अतः वास्तव में हिंसा मृत्यु है।

हिंसा के प्रकार व प्रयोजन

मनुष्य नानाविध आकांक्षाओं की संपूर्ति के लिए हिंसा करता है। कुछ लोग समझपूर्वक हिंसा करते हैं कुछ अज्ञान के कारण हिंसा में प्रवृत्त होते हैं। कुछ लोग यज्ञ, बलि आदि के लिए हिंसा करते हैं। इस दृष्टि से हिंसा के चार रूप हमारे सामने आते हैं।

1. सुविचारित हिंसा-समझपूर्वक की जाने वाली हिंसा।
2. अशुभ अध्यवसाय व भय से हिंसा।
3. पाप मुक्ति के लिए की जाने वाली हिंसा।
4. आशंसा-अभिलाषा की पूर्ति के लिए की जाने वाली हिंसा।

"इच्चेतेहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दंड सगायाणं।"[25]

"संपेहार भया कज्जति।"[26]

"पावमोक्खत्ति मण्णमाणे।"[27]

"अदुवा आसंसाए।"[28]

उपर्युक्त सूत्रों में हिंसा के प्रकारों का उल्लेख किया गया हैं।

आचारांग में सूत्रकार ने अन्यत्र दो प्रकार की हिंसा का उल्लेख किया हैं।

1. प्रयोजनात्मक। "अप्पेगे अट्ठाए वहंति।"
2. अप्रयोजनात्मक। "अप्पेगे अणट्ठाए वंहति।"[28]

अन्य दर्शनों में हिंसा

भगवान महावीर के समय धर्म का क्रिया काण्ड रूप अधिक था। उसे ही धर्म, अपवर्ग का कारण माना जाता था। दैनंदिन जीवन-यापन के लिए बहुत हिंसा की जाती थी। महावीर ने कहा कोई भी जीव मारने योग्य, परिताप देने योग्य और दास बनाने योग्य नहीं है। महावीर ने मानसिक गुलामी को भी हिंसा कहा है। महावीर के समय धर्म के लिए की जाने वाली हिंसा को हिंसा नहीं मानते थे। यज्ञ, बलि आदि से पाप मुक्ति मानते थे। मीमांसक के अनुसार वह हिंसा धर्म का कारण है जो प्रमाद से उत्पन्न नहीं होती। वेदों में प्रणीत हिंसा धर्म का कारण नहीं हो सकती। जिस प्रकार कोई स्त्री माता व बंध्या एक साथ नहीं हो सकती उसी प्रकार हिंसा का अधर्म रूप और धर्म रूप होना विरूद्ध है। आचार्य मल्लिसेन ने इसी बात को व्यंग्यात्मक रूप में अभिव्यक्त करते हुए कहा है-यदि यूप को काटने से, पशुवध करने से, रक्त से पृथ्वी का सिंचन करने से स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है तो फिर नरक में जाने के लिए कौन-सा मार्ग बचेगा।[29]

यदि यज्ञ में मारे जाने पर पशुओं की ऊर्ध्व गति होती है, स्वर्ग की प्राप्ति होती है तो तुम अपने माता-पिता का यज्ञ में वध क्यों नहीं कर देते ? इससे उनकी ऊर्ध्व गति होगी। स्वर्ग मिल जाएगा। और तुम पितृऋण से मुक्त हो जाओगे। स्वर्ग कौन नहीं जाना चाहता, तुम स्वयं भी स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ कर सकते हो। पशु वध कर बलि देते हो फिर स्वंय की बलि देकर स्वयं स्वर्ग क्यों नहीं चले जाते? पशु वध का प्रपञ्च क्यों करते हो? पशुओं ने भी कभी तुमसे स्वर्ग प्राप्ति की कामना नहीं की-

1. नाहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया,
2. सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो।
3. स्वर्गं यान्ति यदा त्वया साधो नु युक्त तव।
4. यज्ञं किं न करोति मातृ-पितृभिः पुत्रैस्तथा बांधवैः।[30]

अपना किया हुआ कर्म अपने को ही भुगतान पड़ता है। इसीलिए किसी के हनन की इच्छा मत करो।[31] चूर्णिकार ने भी इसी मत की पुष्टि में कहा है- जैसे तुमने दूसरों को संवेदित किया है वैसा ही तुम्हें संवेदित करना होगा। इसीलिए किसी प्राणी की हनन की इच्छा नहीं करनी चाहिए।[32]

हिंसा का परिणाम

हिंसा एक विभाव है। हमेशा दुःख का हेतु बनता है। ऐसी स्थिति में हिंसा का परिणाम सुखद कैसे हो सकता है? इसीलिए आचारांग सूत्र में कहा-हिंसा अहित के लिए होती है, हिंसा अबोधि के लिए होती है। हिंसा का परिणाम सुखद नहीं होता। इसलिए इसे अहित कहा है। हिंसक व्यक्ति चिरकाल तक ज्ञान, दर्शन और चारित्रात्मक रत्नत्रयी को प्राप्त नहीं कर सकता, यही महान् अहित है।[33]

वर्तमान में पर्यावरण का संतुलन असंतुलित हो रहा है। इसका कारण नाभिकीय विस्फोट माना जाता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि अणु युद्ध हुआ तो विश्व स्थिति में भारी परिवर्तन आ जाएगा। सारी धरती व आकाश धूल से भर जाएंगे। गर्मी-सर्दी से मौसम असंतुलित हो जाएगा। हिमखण्ड पिघल जाएंगे। बस्तियां पानी में बह जाएगीं, सारा भू-भाग विषाक्त हो जाएगा।

इसी विषय का जब आचारांग व भगवती के संदर्भ में अध्ययन करते हैं तो लगता है आचारांग और व्याख्याप्रज्ञप्ति की विचारधारा समान है। हिंसा मार, ग्रन्थि, मोह और नरक है। हिंसा, अहित व अबोधि का घटक तत्त्व है। हिंसा जन्म, मरण का मुख्य कारण है। अवसर्पिणी के छे आरे के प्रारंभ में वायु भी प्रलयकारी हो जाएगी। समवर्तक वायु से पहाड़ भी चलायमान हो जाएंगे। आकाश व धरती धूल से भर जाएगी। सूर्य इतना गर्म होगा कि आदमी झुलस जाएगा। चन्द्रमा इतना ठंडा होगा कि रात को कोई आदमी बाहर नहीं निकल सकेगा। निकलेगा तो ठंड के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। सारे पर्वत नष्ट हो जाएंगे। केवल एक पर्वत वैताढ्य बचेगा। लोग उसी की शरण में रहेंगे। वर्षा से जो भी पानी बरसेगा, उससे रोग बढ़ेंगे। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, मकौड़े, सभी नष्ट हो जाएंगे। नदियां सूख जाएगी।[34] आचारांग व भगवती का यह वर्णन नाभकीय युद्ध से भी अधिक खतरनाक है।

आचारांग में उल्लेख है कि पृथ्वीकाय को वैसे ही कष्टानुभूति होती है जैसे मूर्च्छित मनुष्य को प्राण वियोजन करने पर कष्ट होता है।[35] वर्तमान में पृथ्वी का अतिदोहन किया जा रहा है। भूवैज्ञानिकों ने आशंका प्रकट की है कि यदि कुछ वर्षों तक इसी तरह खनिज का दोहन किया गया तो प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाएगा। उद्योगीकरण की लहर के कारण पृथ्वी का अतिरिक्त दोहन हो रहा है। पत्थर के कोयले जलने से वायु प्रदूषण भी बढ़ रहा है। इससे कार्बनडाइऑक्साइड तथा अन्य आर्गेनिक गैसें वायुमण्डल को दूषित कर रही हैं। जिससे

विकास के नाम पर व्यक्ति विनाश की ओर गति कर रहा है। यह विपरीत गति अहित का कारण है।

अप्काय का असंयम हिंसा का कारण है। तात्कालिक परम्परा के अनुसार कुछ लोग जलकाय में जीवत्व स्वीकार नहीं करते थे। जल में जीव होते हैं- यह मान्यता थी। महावीर ने कहा जल स्वयं जीव है और जल के आश्रित अनेक त्रस जीव भी होते हैं। वे अप्काय जीव नहीं है किन्तु ये जल में उत्पन्न होने वाले त्रसकायिक जीव हैं। इस प्रकार जल मिश्रित जीव और जलकायिक जीवों के संबंध में चार विकल्प बनते हैं।

1. सजीव जल और जल-निश्रित जीवों का अस्तित्व।
2. निर्जीव जल और जल निश्रित जीवों का अभाव।
3. निर्जीव जल किन्तु जल निश्रित जीवों का अस्तित्व।
4. सजीव जल किन्तु जल निश्रित जीवों का अभाव।[36]

इस प्रकार जल तीन प्रकार का होता है- सजीव, निर्जीव और मिश्र।

इन्द्रिय संपन्न मनुष्य के पैर आदि का शस्त्र से छेदन करने पर उनको जो कष्टानुभूति होती है वैसी ही जलकायिक जीवों को होती है।[37] पर्यावरण विज्ञान के अनुसार जल प्रदूषण मनुष्य के अस्तित्व की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर रहा है। जीवन के लिए ऑक्सीजन अति आवश्यक है। पृथ्वी पर 50-60 प्रतिशत ऋण वायु का उत्पादन पानी में पैदा होने वाली सूक्ष्म वनस्पति फायटोप्लैक्शन से होता है। वह सूर्य से प्रकाश संश्लेषण कर हाइड्रोजन व ऑक्सीजन को विभक्त करती है।

आचारांग में वनस्पति के लिए 'दीर्घलोक' का प्रयोग किया गया है। स्थावर जीवों में वनस्पति की चेतना अत्यधिक स्पष्ट है। वनस्पति की हिंसा भी व्यक्ति के अहित का निमित्त बनती है। प्रदूषण के संदर्भ में यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार पेड़-पौधों के कारण ही जीवन है। वनस्पति की अहं भूमिका है। यह मानव के लिए अनेक दृष्टियों से वरदान है। संसार में जितनी प्राणवायु है, उसका अधिकांश भाग वनस्पति से ही उत्पन्न होता है। मनुष्य की अधिकांश आवश्यकता की पूर्ति वनस्पति के द्वारा ही होती है अतः उसका विनाश मनुष्य का अपना विनाश है। वनस्पति की हिंसा करने से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाता है। करोड़ों टन उपजाऊ मिट्टी बह जाती है। इसलिए भगवान महावीर ने कहा वनस्पति की हिंसा मत करो वनस्पति की हिंसा तुम्हारे लिए अहित का कारण है।[38]

वायुकाय की हिंसा के संबंध में आचारांग में उल्लेख है कि वायुकाय की हिंसा अहित और अबोधि का कारण है। वायु को वैसे ही कष्टानुभूति होती है जैसे शस्त्र से छेदन-भेदन करने पर इन्द्रिय विकल व्यक्ति को कष्ट होता है।[39] असंयम के कारण ही मनुष्य त्रसकाय

की हिंसा करता है। जो आतुर मनुष्य स्थान-स्थान पर त्रसकाय प्राणियों को परिताप दे रहे हैं।[40] वे दुःख से अभिभूत हो दिशाओं और विदिशाओं में सब ओर से भयभीत रहते हैं।[41]

भगवान महावीर ने. ाड्जीवनिकाय की हिंसा का बहुत सूक्ष्मता से विवेचन किया है। आचारांग में इसके स्वरूप, परिणाम व कारण की मीमांसा बहुत सूक्ष्मता से की गई है। जो एक की हिंसा करता है वह. ाड्जीवनिकाय की हिंसा करता है। यह हिंसा- संबंधी बहुत सूक्ष्म विश्लेषण है। व्यक्ति की स्थूल बुद्धि इसे ग्रहण नहीं कर सकती। महावीर के चिंतन को नये रूप से प्रस्तुत कर एक क्रान्ति की है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार एक पत्ता भी यदि हिलता है तो उससे सारा विश्व प्रभावित होता है।

षड्जीवनिकाय में जीवत्व की व्याख्या भगवान महावीर के अतिशय ज्ञान साक्ष्य है। यह अलौकिक बात है। सारा लोक जीवों से भरा है। शरीर का एक अणु जितना भी हिस्सा ऐसा नहीं है जहां सूक्ष्म जीव नहीं हों। भगवान से प्रश्न पूछा गया। इस अंगुली में कितनी काय के जीव हैं? उत्तर दिया यह स्वयं तो जीव है ही किन्तु असंख्य सूक्ष्मकाय जीव भी इसमें हैं। इसमें पृथ्वीकाय भी है अप्काय भी है, तैजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीव भी हैं। एक सूई की नोंक टिके, उतने भाग में अनन्त जीव हो सकते हैं।

हिंसा विरति के उपाय

आचारांग में केवल हिंसा के स्वरूप, हिंसा के कारणों और परिणाम की चर्चा नहीं की गई है, अपितु उनसे बचने के उपायों का निर्देश है। हिंसा से विरत होने का सबसे पहला उपाय है 'परिज्ञात-कर्मा' लोक में ये सभी कर्मसंभारंभ परिज्ञातव्य है।[42]

हिंसा का मूल कर्म-विपाक है। इसलिए कर्म का सर्वांगीण ज्ञान कर उसकी परिज्ञा करने से व्यक्ति हिंसा से बच सकता है। इसी संदर्भ में यह ज्ञातव्य है कि जो पृथ्वीकाय आदि जीवों में चेतना स्वीकार कर उनके समारंभ से विरत होता है वह परिज्ञात-कर्मा कहलाता है।

अनासक्त चेतना का विकास

हिंसा विरति का महत्वपूर्ण उपाय है- अनासक्त चेतना का विकास करना। चित्त को रागद्वेष के भावों से मुक्त रखना। आचारांग में हिंसा विरति के उपायों का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''वीर पुरुष हिंसा कर्म में लिप्त नहीं होता।''

'कुसले पुण णो बद्धे' कुशल पातंजल दर्शन में जीवनमुक्त या विदेह मुक्त को कहा जाता है। जीवनमुक्त व्यक्ति संसार में जीवनयापन करता हुआ भी कर्म बंध से उपरत हो जाता है।

लोक-संज्ञा का परित्याग

हिंसा विरति का महत्वपूर्ण उपाय है कि लोक-संज्ञा का परित्याग करना। परिग्रह चेतना को निर्मूल कर लोक संज्ञा का परिज्ञान कर उसे छोड़ने वाला हिंसा से उपरत हो सकता है।[43]

लोक-संज्ञा का तात्पर्य है-परिग्रह। परिग्रही व्यक्ति द्रष्टा नहीं हो सकता। परिग्रह में मूर्च्छित चित्त पदार्थ को देखता है या परिग्रह को देखता है। वह केवल चैतन्य का अनुभव नहीं कर सकता। इसीलिए द्रष्टा नहीं हो सकता। अतः हिंसा विरति के लिए परिग्रह की परिज्ञा का विवेक आवश्यक है।

अप्रमाद-चेतना का जागरण

हिंसा विरति का महत्वपूर्ण उपाय है- अप्रमाद की चेतना का जागरण करना। प्रमाद हिंसा का कारण है। अप्रमाद हिंसा-विरति का हेतु है। सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।[44]

आत्मतुला का विकास

आत्मतुला का विकास हिंसा विरति का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस भाव का जितना अभाव होता है व्यक्ति उतना ही अधिक हिंसक मनोवृत्ति का हो जाता है। शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन आत्मतुला की पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठित है। ड्जीवनिकाय का निरूपण कर महावीर ने सबके अस्तित्व को समान रूप से स्वीकार किया। जब प्रत्येक प्राणी के प्रति तादात्म्य की अनुभूति होगी तब मानसिक और व्यावहारिक हिंसा का निरसन स्वतः हो जाएगा। महावीर की वाणी- **"एवं तुल्ल-मण्णेसिं-"** का हार्द यही है कि आत्मतुला का अवबोध जिसे हो जाता है वह हिंसा से विरत हो जाता है।

पर्यावरण के संदर्भ में हिंसा विरति का यह सूत्र और भी स्पष्ट हो जाता है। अहिंसा का अर्थ या विरति का अर्थ इतना ही नहीं किसी को मत मारो, आत्म तुला का विकास करो। उसका अर्थ यह भी है ऐसा वातावरण भी पैदा मत करो जिससे जीव मर जाएं। न मन से किसी के प्रति दुश्चिंतन करो और न वाणी से आत्मघाती वचनों का प्रयोग करो।

पर्यावरण के अनुसार जीव व अजीव एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जीव पदार्थों को व पदार्थ जीवों को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण विज्ञान के अनुसार जीव पृथ्वी पर निश्चित तापमान में ही जी सकता है। सृष्टि का असंतुलन प्राणी मात्र को प्रभावित करता है। हिंसा-विरति व पर्यावरण-विज्ञान एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं।

सूत्रकार ने निर्देश दिया है- संधिं लोगस्स जाणित्ता।

आयओ बहिया पास।

आचारांग में उल्लेख है कि यदि युद्ध करना है तो आत्मा के साथ युद्ध करें जो अपने सुख की इच्छा से अन्य प्राणियों को मारता है उसे वर्तमान काल में या भविष्य में कभी भी सुख नहीं मिल सकता।

इन हेतुओं की समीक्षा कर मनुष्य स्वयं हिंसा में प्रवृत्त नहीं होता न दूसरों से हिंसा करवाता है। आत्मतुला का विकास होने पर यह बात सहज बुद्धिगम्य हो जाती कि जिसे तू

मारना चाहता है, वह तूं ही है। इससे अद्वैत का प्रतिपादन होता है। सब आत्माएं समान हैं। वह तुम्हारे से भिन्न नहीं है। इसीलिए जो व्यक्ति अन्य की घात करता है, वह अपनी घात से बच नहीं सकता। यह हिंसा विरति का महत्त्वपूर्ण आलंबन है।

संदर्भ सूची

1. आचारांग सूत्र, वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, सम्पादक, विवेचक मुनि नथमल, जैन विश्व भारती प्रकाशन, लाडनूं 1/7
2. वही, 2/42
3. वही, 3/13
4. वही, 3/21
5. वही, 2/150
6. आप्टे परामर्श- Violence
7. आचारांग सूत्र 1/13
8. आचारांग वृत्ति पत्र- 34
9. वही- 35
10. आचारांग सूत्र 1/14
11. आचारांग वृत्ति पत्र-35
12. उत्तराध्ययन 23/25
13. आचारांग चूर्णि, पृष्ठ 20
14. आचारांग सूत्र 1/15
15. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, डॉ. एस.एन. शर्मा, हरप्रसाद भार्गव, विनोद पुस्तक मन्दिर, मेरठ पृ. 88
16. धम्मपद- 192
17. आचारांग सूत्र 3/21
18. वही, 1/10
19. वही, 2/63-64
20. वही, 2/65
21. हिन्दुस्तान 17 सि. 1996
22. आचारांग सूत्र 6/21
23. आचारांग वृत्ति पत्र- 26
24. आचारांग सूत्र 1/25
25. वही, 2/42
26. वही, 2/43
27. वही, 2/44
28. वही, 2/45
28. आचारांग सूत्र 1/140
29. स्याद्वाद्मंजरी : श्री मल्लिषेणसूरि, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास, 1992, पृ. 92
30. योगशास्त्रः, आचार्य हेमचन्द्र, जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, 1926, प्र.वि. 2/268
31. आचारांग सूत्र 6/8/103
32. आचारांग चूर्णि पृ.- 194
33. आचारांग सूत्र 1/23, 105, 146
34. भगवती 6/117-123
35. आचारांग सूत्र 1/30
36. आचारांग चूर्णि पृ.- 27
37. आचारांग सूत्र 1/52-53

38. वही, 1/105
39. वही, 1/124
40. वही, 1/123
41. वही, 4/10
42. वही, 1/6
43. वही, 2/184
44. वही, 2/6 4

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचारांगभाष्यम् -भाष्यकार- आचार्य महाप्रज्ञ, अनुवादक- मुनि दुलहराज, प्रकाशक, जैन विश्वभारती संस्थान, प्र.स. दिसम्बर, 1994
2. महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, प्रकाशक- आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राज.), सं. 1999
3. आचारांग और महावीर, डॉ. साध्वी शुभ्रयशा, जैन विश्व भारती प्रकाशन, 2001
4. जैन दर्शन के मूलसूत्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, सं. 2001
5. समस्या का सागर अहिंसा की नौका, साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, सं. 2003
6. कैसी हो इक्कीसवीं शताब्दी, आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती, लाडनूं, सं. 1999
7. गांधी दर्शन, शांति एवं मानवाधिकार, डॉ. अनिलधर, पूजा शर्मा, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, सं. जून 2011
8. मनन और मूल्यांकन, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राज.) 1990
9. अस्तित्व और अहिंसा, युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.) 1990

सहआचार्य प्रोफेसर
प्राच्य विद्या एवं भाषा विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं